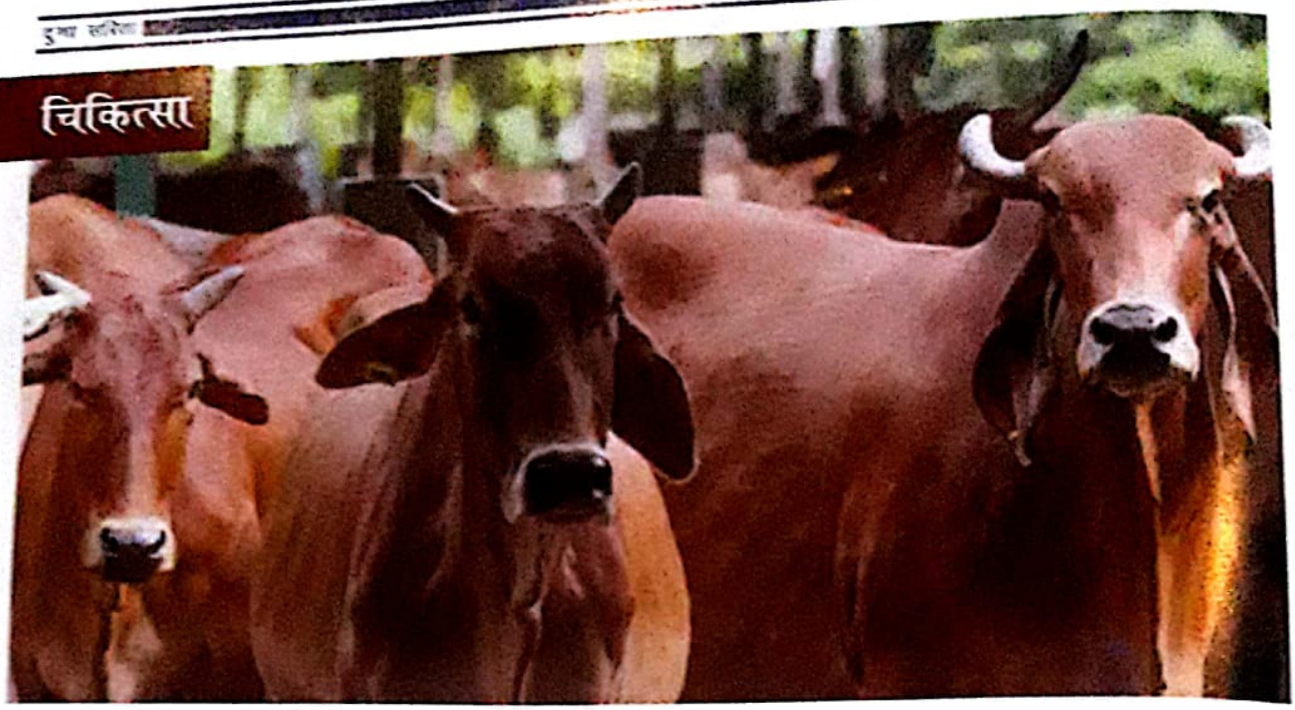

खुरपका रोग का प्रभावी प्रबंधन

डा. सुधांशु शेखर[1], डा. एस. बी सुधाकर[2], डा. संजय कुमार[3],

1 विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशु चिकित्सा विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, कोडरमा, झारखण्ड,
2 वैज्ञानिक, भा.कृ.अनु.प., राष्ट्रीय उच्च सुरक्षा पशुरोग संस्थान, भोपाल, मध्य प्रदेश
3 सहायक प्राध्यापक, पशु पोषण विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना, बिहार

खुरपका रोग (एफएमडी) जुगाली करने वाले स्तनधारी पशुओं में होने वाला अत्यधिक संक्रामक रोग है। भारत में इस रोग का प्रकोप साल भर होता है तथा देश के लगभग सभी भागों में पाया जाता है, जो भारी आर्थिक नुकसान का कारण है। इस रोग से गाय, भैंस तथा शूकर सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। अन्य लघु रोमंथी पशुओं जैसे भेड़ तथा बकरी में भी इस रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। इस रोग में मुँह की श्लेष्मा, खुरों के बीच का स्थान, कारोनरी पट्टी आदि में छाले एवं फफोले बन जाते हैं। रोग से उबरने के बाद पशु कुरूप हो जाते हैं। पशु का शरीर खुरदरा हो जाता है। उनमें नयी–नयी व्याधियाँ खड़ी हो जाती हैं। घावों में कीड़े पड़ जाते हैं तथा खुर गिर भी जाते हैं। खुर गिरने से पैर स्थायी रूप से कुरूप हो जाता है, पशु लंगड़ा हो जाता है। पशुओं के शरीर के बाल बढ़ जाते हैं। त्वचा रूखी और खुरदरी हो जाती है। पशु मेहनत का काम नहीं कर पाते हैं, खासतौर पर धूप में काम करते वक्त जल्दी थक जाते हैं तथा हाँफने लगते हैं। इस रोग से प्रभावित 20–30 प्रतिशत पशुओं की मौत भी हो जाती है, जिसमें नवजात पशुओं की संख्या अधिक होती है। इस रोग से पशुधन उत्पादन में भारी कमी आती है। साथ ही देश से पशु उत्पादों के निर्यात पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, क्योंकि रोग मुक्त विकसित देश, भारत जैसे देशों से निर्यात तथा आयात पर प्रतिबंध लगा देते हैं, जिससे देश की पशुधन उद्योग की निर्यात क्षमता बुरी तरह प्रभावित होती हैं।

तेज संक्रमण

यह रोग संक्रमण के दृष्टिकोण से पशुओं में अत्यधिक तेजी से फैलने वाला रोग है। यह कुछ ही समय में एक झुँड या पूरे गांव के अधिकतर पशुओं को संक्रमित कर देता है। यह रोग मुख्यतः रोगी पशु के प्रत्यक्ष सम्पर्क से फैलता है

Scanned by CamScanner

तथा दूषित जल, खाद्य पदार्थ, सूखी घास तथा चारागाहों, वायु संक्रमण द्वारा भी फैलता है। पशुपालक के कपड़े एवं हाथों, जूतों आदि द्वारा भी रोग फैलता है। दूध दुहने वाला ग्वाला आदि के द्वारा भी रोग पशुओं तक फैलता है। अन्य माध्यमों में रोग से उबरे पशु, चूहे, साही, घुमंतू पक्षी आदि भी रोग फैलाते हैं। वायुयानों, जलयानों, रेलयानों के अतिरिक्त रोग को एक देश से दूसरे देश तक फैलाने में घुमन्तू पक्षियों का विशेष योगदान होता है।

गर्म जलवायु वाले राज्यों में यह विषाणु लम्बे काल तक वातावरण में जीवित नहीं रह सकता, परन्तु शीत जलवायु वाले राज्यों में वायु के माध्यम से 100 किलोमीटर की लम्बी दूरी तक तीव्र गति से फैल सकता है। इस कारण इसे तीव्रगति से फैलने वाला रोग कहते हैं अथवा 'शीघ्र संचरित रोग' व 'तीव्रगति से संचरित रोग' भी कहते हैं।

रोग का कारक

भारत में खुरपका रोग प्राचीन काल से होता है और सामान्यतया अपने स्वाभाविक रूप में फैलता है। इस कारण भारतीय देशी पशुओं में इस रोग को सहन करने की शक्ति हो गयी है। विदेशी एवं संकर नस्ल के पशु अत्यधिक प्रभावित होते है, जिनमें 10–20 प्रतिशत तक मृत्यु दर होती है। जबकि देशी पशुओं में मृत्यु दर 2–3 प्रतिशत ही रहती है। परन्तु नवजात गोवत्सों में मृत्यु दर अधिक हो सकती है। सामान्यतया शूकर प्रजाति इस रोग से सर्वाधिक प्रभावित होते है। संक्रमित शूकर बहुत मात्रा में रोग के विषाणु हवा में छोड़ते हैं जो संचरित होकर अन्य पशुओं में रोग पैदा करते हैं।

यह रोग एक अत्यंत सूक्ष्म (लगभग 25.30 नैनोमीटर) विषाणु से होता है, जिसे पिकोर्नाविरिडी कुल के एफ्थोवायरस वंश मे वर्गीकृत किया गया है। विश्व में इसके सात सीरमी प्रकार ('ए', 'ओ', 'सी' 'एशिया–1' 'सैट 1, 2 एवं 3') पाये जाते हैं। भारत में इसके तीन सीरमी प्रकार हैं – 'ओ' 'ए' तथा एशिया –1। इनमें से मुख्य सीरमी प्रकार 'ओ' सर्वाधिक पाया जाता है।

संक्रमित खुर

रोग के लक्षण

सामान्यतः संक्रमण के बाद रोग लक्षण उत्पन्न होने की अवधि 2–12 दिनों की होती है, परन्तु कृत्रिम संक्रमण में रोग के लक्षण 12 घंटों में देखे जा सकते हैं।

रोगी पशुओं में निम्नलिखित लक्षण पाये जाते हैं.

- अत्यधिक ज्वर।
- जीभ तथा तलवे पर छालों का उभरना जो बाद में फट कर घाव में बदल जाते हैं।
- मसूड़े, होंठ, नथुने, होंठों के मिलने वाले स्थान, थूथनों पर छालों का उभरना।
- मुख से अत्यधिक धारीदार एवं फेनदार लार का टपकना।
- मुख में घावों की वजह से पशु का भोजन न लेना तथा जुगाली बंद कर देना और कमजोर हो जाना।
- जीभ तथा खुरों की त्वचा का निकल कर बाहर आ जाना।
- खुरों के बीच में घाव होना जिसकी वजह से पशु का लँगड़ा कर चलना।
- बछड़ों में अत्यधिक ज्वर आने के पश्चात् मृत्यु होना।
- थनों पर फफोले होने के साथ–साथ दुग्ध उत्पादन में कमी तथा गाभिन पशुओं में गर्भपात हो सकता है।

Scanned by CamScanner

रोग का निदान

पशुओं में रोग के लक्षण, शव परीक्षण तथा विभिन्न जाँच पद्धतियों द्वारा रोग का निदान सम्भव है। गोपशुओं के मुँह एवं खुरों के छाले एवं फफोले, लार, टपकना एवं लंगड़ाने को देखकर रोग का तात्कालिक निदान करते हैं।

उपचार

अन्य विषाणुजनित रोग की तरह इस रोग का भी कोई इलाज नहीं है। द्वितीयक जीवाणु संक्रमण की रोकथाम के लिय घावों पर विभिन्न सल्फा एवं जीवाणुनाशक औषधियों का प्रयोग किया जाता है, जिससे स्वास्थ्य लाभ की प्रक्रिया तीव्र हो सके। चार प्रतिशत सोडियम कारबोनेट, 1 प्रतिशत पोटेशियम परमैंगनेट अथवा फिनाइल का घावों पर प्रयोग, व्रणों को ठीक होने में सहायक है। व्याधिकाल में पशुओं को सुपाच्य, तरल एवं कोमल चारा देना चाहिए। रोगी पशुओं को अलग रखने की व्यवस्था के साथ–साथ वातावरण की शुद्धता एवं स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

बीमारी फैलने की स्थिति में क्या करें

- सभी रोगी पशुओं को झुँड से तुरन्त अलग कर देना चाहिए।
- रोगी पशुओं का प्रबन्धन अलग से करना चाहिए।
- इस रोग की जानकारी नजदीकी पशु चिकित्सालय में दें।
- अगर आस–पास के गाँवों में भी बीमारी फैली है तो स्वस्थ पशुओ को बीमारी थमने तक चरने के लिए खुले में न छोड़ें।
- स्वस्थ होने तक रोगी पशुओं में ज्वर कम करने तथा द्वितीयक संक्रमण रोकने के लिए प्रतिजैविक का इंजेक्शन लगवाते रहें।

रोग से बचाव कैसे करें

भारत में इस रोग पर शोधकार्य द्वारा कई प्रकार के टीके विकसित किये गये हैं।

- क्रिस्टलवॉयलेट टीका
- एल्यूमीनियम हाइड्रॉक्साइड टीका
- बहुसंयोजी निष्क्रियित कोशिका सम्वर्धन जेल खुरहा रोग टीका

इसकी रोकथाम निम्नलिखित सरल बातों को ध्यान में रख कर आसानी से की जा सकती है:

- भारत मे इस रोग के विरूद्ध कारगर टीका (वैक्सीन) आसानी से उपलब्ध है। सभी वयस्क पशुओं, जिनकी उम्र 6 माह से अधिक है, में यह टीका लगाया जा सकता है। सिर्फ गर्भावस्था के अंतिम तिमाही में इस टीके का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- टीका तभी कारगर है जब हर 6 महीने पर इसका प्रयोग हो।
- उत्तर भारत, मध्य भारत तथा उत्तरी पूर्वी एवं पूर्वी भारत में जनवरी माह में टीकाकरण करने तथा जुलाई में पुनः टीकाकरण करने से अधिक लाभ होता है। केन्द्र तथा राज्य सरकार इस टीके पर छूट देती है, ताकि कम से कम दामों में किसानों को यह टीका उपलब्ध कराया जा सके।
- नये पशुओं को झुँड या गाँव में सम्मिलित करने से पूर्व उसकी जाँच आवश्यक है। अगर जाँच किसी कारणवश सम्भव न हो सके, तो इन नए पशुओं को कम से कम चौदह दिनों तक अलग बाँध कर रखना चाहिए।
- पशुओं को पूर्ण आहार देना चाहिए जिससे खनिज एवं विटामिन की मात्रा पूर्ण रूप से मिलती रहे।
- निकटवर्ती क्षेत्र के पशुओं पर निगरानी रखी जाती है।
- संक्रमित पशुशाला को अच्छी तरह विसंक्रमित कर 30 दिनों तक खाली छोड़ना चाहिए तथा 30 दिनों बाद फिर साफ–सफाई कर पशुओं को रखना चाहिए। ■

Scanned by CamScanner

दुग्ध सरिता

डेरी विकास का नया आयाम, नया नाम

जनवरी – फरवरी, 2019

डेरी इंडस्ट्री कांफ्रेंस,
पटना में पधारे
सभी अतिथियों का
हार्दिक स्वागत

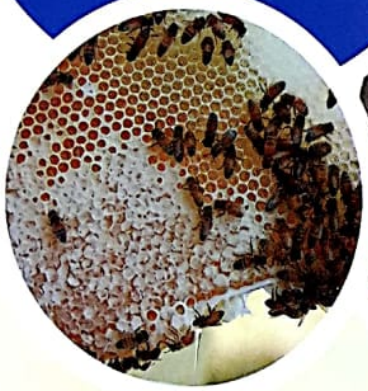

IDA

www.indairyasso.org

किसानों की आमदनी में वृद्धि का संकल्प

Scanned by CamScanner